A Pratibha Spandan Journal

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 13, Issue 02, July-December, 2025

भारतीय ललित कलाओं में साहित्य और संगीत का स्वरूप एवं महत्व

Dheeraj Sharma[1],. Dr. Sonia Ahuja[2]

1 Research Scholar, Department of Theatre and Music, Lovely Professional University
2 Assistant Professor, Department of Theatre and Music, Lovely Professional University

OPEN ACCESS

सार

ललित कलाओं में वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत कला और काव्य कला की गणना होती है। उपयोगी कलाएँ मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति से संबद्ध हैं। उपयोगी कलाओं में भी थोड़ा-बहुत सौन्दर्यबोध का भाव तो रहता है, पर वह गौण है। कुर्सी, मेज आदि वस्तुओं में 'डिजाइन' का ध्यान रखा जाता है. किंतु यह डिजाइन प्रायः उपयोगिता की दृष्टि से बनाई जाती है। इस प्रकार उपयोगी कला व्यवहारजनित और सुविधाबोधी है तथा ललितकला मन के संतोष के लिए है। साथ ही, उसमें उस विशिष्ट मानसिक सौन्दर्य की योजना है, जो उपयोगितावाद से भिन्न वस्तु है। भावात्मक प्रदर्शन जिसका मुख्य ध्येय विशुद्ध आनन्द प्राप्ति हो, उसे ललित कला कहेंगे। ललित कला के उपयोग में पाँच में से केवल दो ही इन्द्रियों का उपयोग होता है- दर्शनेन्द्रिय (आँख) और श्रवणेन्द्रिय (कान), बाकी इन्द्रियों से हम जगत को जानते हैं किन्तु ललित कला में बाकी तीनों इन्द्रियों का कोई काम नहीं रह जाता। कई विद्वानों ने ललित कलाएँ पाँच मानी हैं।

प्रविधि : *प्राथमिक एवं द्वितीयक माध्यमों द्वारा यह शोध आलेख तैयार किया गया हैं।*

मुख्य शब्द: *ललित कला, संगीत, साहित्य, संस्कृति, काव्य*

यद्यपि कला को अखंड, अभिव्यक्त तथा अविभाज्य माना जाता है। सुविधा की दृष्टि से उसे वर्गीकरण के योग्य भी माना गया है। 'कामसूत्र' तथा 'शुक्रनीतिसार' में चौसठ, प्रबन्धकोष में 'बहत्तर' तथा ललितविस्तार में 'छियासी' कलाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। क्षेमेन्द्र ने अनेक कलाओं के नाम बताये हैं, किन्तु चौसठ कलाओं वाला मत ही अधिक मान्य है। डॉ. श्यामसुन्दर दास ने उपयोग कला और ललित कला को ही मान्यता दी है। जिसको गुलाबराय आदि विद्वान भी मान्यता देते हैं। श्री आर. जी कलिंगवुड का कथन है कि-कला एक जाति है, जो दो उपजातियों में विभक्त है- लाभदायक कलाएँ और ललिता कलाएँ। पाश्चात्य विद्वान 'हेगल' ने प्रतीकात्मक, प्रबन्धात्मक तथा भावात्मक कलायें मानी है। कतिपय विद्वान सामान्या कलाएँ और सांस्कृतिक कलाएँ- दो ही भेद मानते हैं, किन्तु अधिकांश विद्वान उपयोगी और ललितकला के पथ में है। अतः उपयोगी और ललित कला- इन दो भेदों की मान्यता ही उपयुक्त प्रतीत होती है।

ललित कला में सौंदर्य का तथा उपयोगी कला में उपयोगिता का प्राधान्य होता है। ललित कलाएँ मनुष्य के नैतिक, बौद्धिक और भावात्मक विकास में योगदान देती हैं और उपयोगी कलाएँ उसके शारीरिक और भौतिक उत्कर्ष में सहायक होती हैं। उपयोगी कला के अंतर्गत तमाम कारीगरी के कार्य आते हैं, जिनका दिन-प्रतिदिन के जीवन में उपयोग होता रहता है। कुम्हार की मिट्टी के बर्तन बनाने की कला से लेकर बड़े-बड़े हवाई जहाज तक की कलाएँ उपयोगी कलाओं के अंतर्गत ही आयेंगी। और जो कलाएँ हमारी रागात्मक चेतनाओं और भावात्मक क्षुधाओं को संतृप्ति प्रदान करती हैं, वही वास्तव में ललित कलाएँ हैं।

विद्वान ललित कला के सामान्यतः पाँच भेद मानते हैं- वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत कला, काव्य कला। "वर्सफील्ड" इनके अतिरिक्त अभिनय कला, नृत्यकला और व्याख्याकला को भी नृत्य कला के अंतर्गत मानते हैं। किन्तु इनका समावेश संगीतकला में तथा साहित्य के अंतर्गत नाट्यकला में हो जाता है। ज्ञानेन्द्रियों की दृष्टि से ललित कलाओं के दो वर्ग माने जाते हैं- दृश्य, वास्तुकला, मूर्तिकला और चित्रकला, श्रव्य संगीत और काव्यकला, किन्तु ध्यानपूर्वक देखें तो संगीत में नृत्य और काव्य में नाटक का समावेश होने के कारण काव्य और संगीत कला, दृश्य और श्रव्य दोनों ही श्रेणी में आती हैं।

ललित कलाओं को निम्नलिखित रूप में विश्लेषित किया जा सकता है

वास्तुकला

वास्तुकला के अंतर्गत मन्दिर, गिरजाघर, स्मारक, प्रसाद तथा अन्य कलात्मक भवन आदि आते हैं।। दक्षिण में देव मन्दिर, आवपर्वत के जैन मन्दिर, साँची के स्तूप, ताजमहल आदि वास्तुकला के उत्कृष्ट नमूने माने जाते हैं, जिनमें वास्तुकार की उत्कृष्ट भावना, सुरूचि एवं भव्यता आदि के दर्शन

होते हैं। धर्मस्थानों में निर्मित कलश, गुम्बज, मिहराबें, जालियाँ, झरोखे आदि वास्तुकार के मानसिक भावों को स्पष्ट अभिव्यक्त करते हैं।" माध्यमों की प्रधानता होने के कारण उसमें सूक्ष्मता का अभाव है।

मूर्तिकला

इस कला का मूर्त आधार वास्तुकला की अपेक्षा सूक्ष्म होता है। मूर्तिकला में प्रस्तरखण्ड, धातु, मृत्तिका आदि में मनोभावों, जीवधारियों की प्रतिच्छाया, शारीरिक और प्राकृतिक सौंदर्य का प्रदर्शन होता है। इसमें कुशल एवं प्रतिभासम्पन्न मूर्तिकार पाषाण, मृत्तिका आदि को स्थापित कर उसे सजीव एवं आकर्षक बनाता है। विभिन्न मुद्राओं एवं भावों से समन्वित तथा भारतीय संस्कृति की परिचायक खजुराहो आदि की मूर्तियाँ इस कला के उत्कृष्ट नमूने है।

चित्रकला

इस कला में मूर्तिकला की अपेक्षा मूर्ताधार अधिक कम रहता है। इसमें चित्रकार वस्त्र, कागज, काष्ठ, कांच आदि पर कूंची, कलम, रेखा तथा रंग आदि के माध्यम से बाह्य और अन्तः भावों को अभिव्यक्त करता है। कुशल 'चित्रकार तो रेखाओं और विभिन्न रंगों द्वारा समस्त परिवेश, आकृति, वर्ण, मुद्रा आदि को सहज ही समाहित कर देता है। वह अपनी तूलिका या कलम से समतल या सपाट सतह पर स्थूलता, लघुता, दूरी और नैकट्य आदि दिखाता है। उसकी कृति में मूर्तता कम और मानसिकता अधिक रहती है।"

संगीतकला

संगीतकला चित्रकला से सूक्ष्मतर है। संगीत का आधार 'नाद' है। नाद के दो भेद हैं- अनाहत नाद और आहत नाद। आहत नाद संगीतोपयोगी होता है। स्वारादि संगीतात्मक - तत्त्व इसी से निसृतः होते हैं, जिनसे संगीत की सृष्टि होती है। संगीतकला में गायन, वादन और नृत्य का समावेश होता है, जो अन्योन्याश्रित है। यह कला गतिशील है। स्वर, ताल, लय सब संगीत के रूप हैं और कलाश्रित हैं। इनसे नृत्य वाद्य भी सम्बन्धित है।" संगीत सर्वग्राह्य एवं भावाद्दीपक होने के साथ-साथ नवरसों की अभिव्यक्ति में भी सक्षम है। इस कला से मानव ही नहीं, पशु-पक्षी तथा वातावरण भी प्रभावित है। संगीत कला रंजक हैं तथा आध्यात्मिक उत्कर्ष में सहायक है। यह कला चक्षुरिन्द्रिय एवं कर्णेन्द्रिय का विषय है। आज इस कला का क्षेत्र अधिक विस्तृत हुआ है, जिसका श्रेय विशेष रूप से सिने-संगीत को है। वर्तमान में संगीत पाश्चात्य और हिन्दुस्तानी संगीत के रूप में अधिक प्रचलित है।

काव्यकला

काव्यकला का मूर्ताधार सूक्ष्मतम माना जाता है। काव्य का मुख्य आधार भाव है, क्योंकि प्रकृति और मानव-जीवन की अनुभूति से उत्पन्न भाव मानस-पटल पर संचित होकर काव्य के रूप में मुखरित हो जाते हैं। काव्य में भाव-सम्प्रेषण, सार्थक शब्दों के माध्यम से होता है। शब्दों से भाषा का रूप सामने आता है, अतः भावाभिव्यक्ति में समुचित भाषा का प्रयोग उपयुक्त है। "भाषा और भाव का जल-बीचि का-सा ही सहज सम्बन्ध है।" अस्तु, काव्य के साधन शब्द और अर्थ ही हैं जिनकी प्राप्ति हेतु महाकवि कालीदास ने पार्वती और परमेश्वर (शिव) की वन्दना की है।

ललित कलाओं में संगीत का सहयोग, किसी-न-किसी रूप में प्राप्त होता है तथा संगीत भी इन कलाओं से सहयोग लेता है। वास्तुकला को किसी अंग्रेजी लेखक ने 'जमा हुआ संगीत कहा है। संगीत की भाँति [वास्तुकला की भी भाषा सार्वजनिक है। वास्तुकला में संगीत को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। दक्षिण के देव-मन्दिरों के मण्डलों में सप्त स्वरों के साथ-साथ श्रुतियों के भी स्तम्भ प्राप्त होते हैं।

वेदपाठी ऋत्विजों के सहायक, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों को ध्वनित करने वाले स्तम्भ भी वास्तुकारी द्वारा निर्मित किए गए हैं। हमारे शिलाशिल्पियों के उत्कृष्ट नमूने संगीतजनक स्तम्भ हैं, जिन्हें बजाने से संगीतमय ध्वनि-पद्धति से समन्वित भवन आदि संगीत-कला के स्वर-लहरी निकलती है।" आधुनिक वास्तुकला तथा अनुरूप देखे जाते हैं। संचार-प्रसार माध्यम-आकाशवाणी दूरदर्शन, चित्रपट, ग्रामोफोन कम्पनी, नाट्यगृह, कला-सभागार आदि के निर्माण में भी वास्तुकला संगीत का सहयोग लेता है। भवनों आदि में संगीत-वाद्य यंत्रों तथा नृत्य-मुद्राओं से युक्त नर्तकियों के चित्रों की रचना, वास्तुकार की संगीत मर्मज्ञता की सूचक है। संगीत के अतिरिक्त स्तम्भों भवनों आदि में अन्तर्निहित कथाएँ और भावनाएँ वास्तुकला में साहित्य की अवस्थिति को भी अभिव्यक्त करती है। अतः वास्तुकला की गरिमा साहित्य और संगीत से परिपुष्ट हुई हैं।

संगीत, मूर्तिकला से भाव और कल्पना का वैचित्र्य प्राप्त करता है। मूर्ति सौंदर्य से प्रभावित संगीतकार के भाव स्वर-लहरी में थिरक उठते हैं। हवेली-संगीत का प्रचलन तो देव-मंदिरों की मूर्ति के आकर्षण का ही परिणाम है। संगीत में प्राप्त एकाग्रता, आनंद, मानसिक तृप्ति तथा हृदय- स्पर्शिता मूर्तिकला में भी देखी जा सकती है। नृत्य-भंगिमाओं तथा वाद्य यंत्रों से समन्वित मूर्तियों में संगीत कला की अमिट छाप अभिव्यक्त होती है। अस्तु मूर्तिकला संगीत की ऋणी है और संगीत मूर्तिकला से प्रभावित है। मूर्तिकला में काव्य का भाव प्राधान्य भी दर्शनीय है।

संगीत और चित्रकला में भी घनिष्त सम्बन्ध है। राग-रागिनियों के चित्रों में, रागादि के स्वरूप, गायन-समय, प्रकृति आदि को दर्शाने में चित्रकला सहयोगिनी है। यथा-भैरव, भैरवी आदि राग-रागिनियों के चित्रों से प्रातः गायन तथा स्वरूप का ज्ञान होता है।

चित्रकला में भी संगीत के वाद्य-यंत्र और नृत्य मुद्राएँ आकर्षक उत्कर्षक हैं। इसलिये शान्ति निकेतन में संगीत शिक्षक के हाथ में चित्रकला की कूंची और चित्रकार के हाथ में दिलरुबा दिखाई दे जाये, तो किसी को तनिक भी आश्चर्य नहीं होता। चित्रकला, भाव-कल्पना आदि की संयोजना में काव्यकला से सहायता प्राप्त करती है। काव्य में स्थित चित्रात्मकता, चित्रकला के प्रभाव को भी अभिव्यक्त करती है।

संगीत कला सभी ललित कलाओं की सहयोगिनी होने के साथ उनसे सहयोग भी प्राप्त करती है। सम्पूर्ण कलाएँ संगीत के लिये अपेक्षित बातों को पूर्ण करने के लिये व्याकुल रहती है। तथा संगीत कला उन कलाओं को सौंदर्यमय-प्रभावोत्पादक, मर्मस्पर्शी बनाने में सहायक होती है। संगीत अन्य कलाओं में भी रंजकता, प्रभावशालिता, हृदय-स्पर्शिता भावाभिव्यंजकता आदि के उत्पादन में सहयोग प्रदान करता है।

संगीत के अभाव से काव्यकला पंगु-सी प्रतीत होती है, क्योंकि संगीत के स्वर, राग, लय, मात्रा, गति आदि का सहयोग उसमें प्राप्त होता है। इसलिये काव्य में संगीत की तरलता, लयात्मकता और गेयात्मकता स्पष्ट अभिव्यक्त होती है। संगीत भी पूर्ण भावाभिव्यक्ति हृदयस्पर्शिता, रंजकता आदि के लिये काव्य का मुखापेक्षी है।" संगीत में कविता का समावेश संगीत की प्रभावोत्पादकता को दुगुना कर देता है। कहीं-कहीं कविता स्वर और ध्वनि के माधुर्य पर इतनी निर्भर हो जाती है कि कविता संगीत की अनुगामिनी बन जाती है। अनुप्रास अर्थात् वर्ण झंकार और छन्द आदि के रूप में काव्य संगीत के गुणों को अपना लेता है। अतः संगीत अर्थबोध के लिये काव्य का सहारा लेता है और काव्य भी प्रभाववृद्धि के लिये संगीत का। दोनों एक-दूसरे के पूरक है।

सभी ललित कलाएँ परस्पर एक-दूसरे की सहयोगिनी होकर भी अपना स्वतन्त्र महत्त्व रखती है। फिर भी विद्वानों ने स्थूलता और सूक्ष्मता के आधार पर इन कलाओं में काव्य और संगीत कला को उत्कृष्ट माना है। कतिपय विद्वानों ने आधार की सूक्ष्मता, प्रभाव, उत्साहवर्द्धकता, आनन्द की विपुलता और सार्वभौमिकता आदि की दृष्टि से संगीतकला को सर्वोत्कृष्ट कहा है। काव्य को उत्कृष्ट मानने वाला वर्ग अमूर्त मानसिक भावों के अभिव्यंजक शब्द समूह और वाक्यों से काव्य का प्रादुर्भाव मानता है किन्तु शब्द समूह तथा वाक्य रचना एक तो मूर्त है, दूसरे शब्दों तथा वाक्यों का आकार संगीत के अमूर्त नादोत्पन्न सप्त स्वरों की अपेक्षा वृहतर है। इसके अतिरिक्त काव्य में अन्य कलाओं का समावेश मानकर काव्य को सर्वोपरि मानना भी न्यायोचित नहीं, क्योंकि संगीत अन्य कलाओं को अपने में समाविष्ट के साथ-साथ काव्य का भी समावेश कर लेता है। कारण यह है कि संगीत का आधार नाद काव्य का ध्वनिमय शब्द होता है तथा काव्य के शब्दों में सांगीतिक ध्वनियों विद्यमान रहती हैं। जहाँ तक काव्य में समग्र मनोभावों की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, यह अभिव्यक्ति संगीत के स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, लय आदि द्वारा भी संभव है। नवीन सृष्टि-संरचना की क्षमता जहाँ काव्य में हैं, वहाँ संगीत भी स्वरलहरी, लय, नृत्य-मुद्राओं के हाव-भाव आदि के द्वारा विचरण कराने में सक्षम है। अतः संगीत कला की अपेक्षा काव्यकला को उत्कृष्ट मान लेना युक्ति संगत नहीं है, क्योंकि काव्य का संगीत से पृथक् होकर अस्तित्व ही संदिग्ध हो जाएगा। इसलिए कहा जा सकता है कि काव्य और संगीत एक-दूसरे के पूरक है, दोनों में से एक को अलग करने से उसका अस्तित्व नाममात्र का रह जायेगा।

संगीत को सर्वोच्च स्थान देने वाला वर्ग संगीत को नाद-प्रधान होने से सूक्ष्मतर आधार वाला मानता है, किन्तु काव्य भी भाव-प्रधान होने से सूक्ष्मतम आधार से समन्वित है। प्रभाव की दृष्टि से संगीत के साथ काव्य भी कम प्रभावोत्पादक नहीं है। काव्य और संगीत दोनों ही समान रूप से श्रोता आदि के हृदय पर अमिट प्रभाव डालने में समर्थ हैं। उत्साहवर्द्धन का गुण जहाँ संगीत में प्राप्त होता है, वहाँ काव्य भी उत्साहवर्द्धन कुशलता से करता है।

उपसंहार

आनन्दानुभूति का आधिक्य संगीत में ही नहीं, काव्य में भी है। जहाँ संगीत की मधुर ध्वनिमय तान आनन्दमय कर देती है, वहाँ काव्य की कोमलकान्त पदावली और मधुर भावों की योजना आनंदित कर देती है। यद्यपि संगीत कला मानव, मानवेतर प्राणी, वनस्पति आदि को प्रभावित करती है और काव्य मानवमात्र को ही प्रभावित करता है, तथापि हिन्दुस्तानी संगीत में रूचि रखने वाला पाश्चात्य संगीत का तथा उत्तर भारत के संगीत से परिचित दाक्षिणात्य संगीत का श्रवण कर समझ नहीं सकता। आनन्दानुभूति किंतु भावोबल से कर सकता है। अतः संगीत सार्वभौम माना जा सकता है। भाव-प्रधान होने से काव्य को भी सार्वभौमिकता से समन्वित मान सकते हैं, क्योंकि काव्य किसी भी भाषा का हो, उसके भाव सर्वग्राह्य हो सकते हैं किन्तु भावाभिव्यक्ति एवं प्रभाव आधिक्य के कारण, फलस्वरूप काव्य की अपेक्षा संगीत को ही उत्कृष्ट मानना उचित प्रतीत नहीं होता है।

आनन्दानुभूति में सक्षम, मनोभावाभिव्यंजन, प्रभावोत्पादक, रसोत्पादक आदि होने के कारण काव्य और संगीतकला उत्कृष्ट है। परस्पर उत्कर्षक काव्य और संगीतकलाएँ अमूर्त सूक्ष्मतम भाव और नाद प्रधान होकर भी शब्दार्थ तथा स्वर, लय, नृत्य आदि में संपादित होकर, मूर्त बनकर 'सत्यं, शिवं सुन्दर की सृष्टि करती हैं। अतः काव्य और संगीत कलाएँ सभी कलाओं के महत्त्वपूर्ण, सूक्ष्माधार तथा महान उद्देश्यपूर्ति में सक्षम होने के उच्च स्थान की अधिकारिणी हैं। अस्तु, इन दोनों कलाओं को सभी कलाओं से उत्कृष्ट तथा अन्योन्याश्रित करना ही न्यायसंगत एवं उचित है।

संदर्भ सूची

त्रिपाठी, रामप्रसाद, सम्मेलन पत्रिका, कला अंक (1987) हिन्दी साहित्य, सम्मेलन इलाहाबाद
त्रिगुणायत, डॉ. गोविन्द, शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धाना प्रथम खण्ड (1950), भारती साहित्य, मंदिर, फैव्वारा, दिल्ली
दास, डॉ. श्यामसुन्दर, साहित्यालोचन, (सं. 1988 दि.) साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, काशी
कलिंगवुड, आर. जी., कला के सिद्धान्त, अनुवाद-डॉ. ब्रजभूषण पालिवाल, (संस्करण 1974), ऑक्सफॉर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन
प्रताप, प्रो. विश्वनाथ, कला एवं साहित्य प्रकृति और परम्परा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना
अग्रवाल, डॉ. सुरेश, भारतीय काव्य शास्त्र के सिद्धांत (2000) नवीन संस्करण, अशोक प्रकाशन, नई सडक, दिल्ली
पं. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, भाग-1 (1943), प्रथम स्वरगताध्याय, अडियार लाईब्रेरी, मद्रास
राय, बाबू गुलाब, सिद्धान्त और अध्ययन, (1960), आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
कालीदास, रघुवंश (2012), चौखंबा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
गर्ग, प्रभुलाल, संगीत, मासिक पत्रिका, जून (1959), संगीत कार्यालय, हाथरस
वापट, विजय, पूर्वाग्रह, मासिक पत्रिका, अंक 48, भारत भवन न्यास, श्यामला हिल्स, भोपाल
गुप्ता, डॉ. उषा, हिन्दी के कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत, (वि. सं. 2016), लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ